अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४७ अंक : १ पौष–माघ वि.सं.– २०७७ जनवरी, २०२१ पृष्ठ –२८ RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X

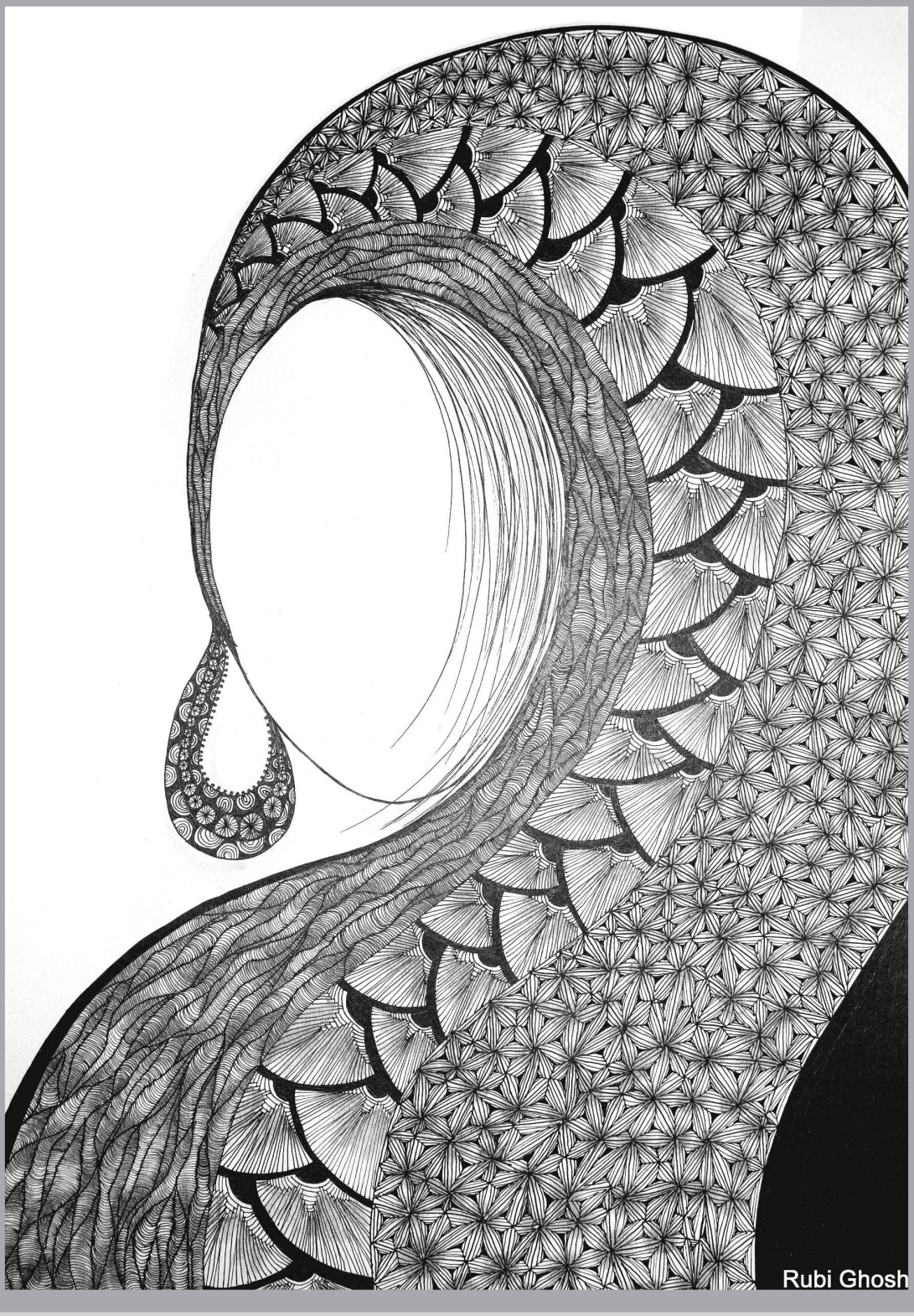

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

वागड़ की मीरा – गवरी बाई

गवरी बाई का जन्म १८१४ में डूंगरपुर के नागर ब्राह्मण परिवार में हुआ। माता–पिता ने कन्या के जन्म को धन्यभाग माना। ५–६ वर्ष की आयु में गवरी बाई का विवाह कर दिया। थोड़े समय बाद ही पति का देहावसान हो गया। तभी से गवरी बाई की ज्ञान के प्रति लगन लग गई। समय के साथ गवरी बाई ने पढ़ना–लिखना भी सीखा। वे भागवत गीता और धार्मिक किताबें पढ़तीं। ११ वर्ष की आयु में इन्होंने एकान्तवास ले लिया। गवरी बाई ज्यादा समय पूजा–पाठ, भजन–कीर्तन में बिताने लगीं। दूसरों के पद और भजनों को गाते हुए गवरी बाई ने स्वयं भी पद रचे। ❑

गवरी चित में चेतिये, तजो राग अरु बैर।
सत्य नाम ही समर लो, हरि करेगो म्हेर।।

गवरी बाई कहती हैं कि अपने हृदय में ज्ञान को जगाओ। राग मोह और बैर भाव को त्याग दो। सत्य नाम का ही सुमिरन करो। ईश्वर स्वयं मेहर करेंगे।

तरवर, सरवर, संतजन, चौथो वरसण मेह।
परमारथ रे कारणै, च्चारां धारी देह।।

पेड़, सरोवर, संत जन और वर्षा। इन चारों ने दूसरों की भलाई करने के लिए ही जन्म लिया है। गवरी बाई का आशय यह है कि हमें भी परमारथ के लिए ही जीना है।

समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ४७ अंक : १ पौष-माघ वि.सं. २०७७ जनवरी, २०२१

क्र म

०३ वाणी
वागड़ की मीरा - गवरी बाई

०७ आलेख
राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०

१४ कविताएं
मंगलेश डबराल की कविताएं

२३ विभूति
विमला ठकार : आध्यात्मिक ज्ञान दान को समर्पित जीवन

०५ अपनी बात
नये साल की राम राम

१३ आलेख
नरम परवरिश

१९ आलेख
लिपियों का लेखा-जोखा

२५ कविताएं
अमित कल्ला की कविताएं

२६ पिछला पन्ना
कौन बड़ा? लोक या सरकार

अपील

समिति के सभी सदस्यों, दूर-दराज के मित्रों एवं भारत के विभिन्न राज्यों में फैले सुधी पाठकों से निवेदन है कि समिति के प्रकाशन की निरंतरता बनाये रखने के लिए अपनी सहयोग राशि पूरी उदारता के साथ भिजवाने का अनुग्रह करें। आज किसी भी पत्रिका का प्रकाशन बहुत मुश्किल काम है मगर समिति अपने पूर्ण सेवा भाव के साथ अनौपचारिका को पिछले ४५ वर्षों से निरंतर निकाल रही है। सभी प्रबुद्ध पाठक जानते हैं कि अभी हाल ही में कादम्बिनी भी बंद हो गई है जो हिन्दुस्तान टाइम्स का प्रकाशन था। ऐसी स्थिति में हम कटिबद्ध हैं कि अनौपचारिका निरंतर निकलती रहे। आपका सहयोग सादर अपेक्षित है।

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक :
रमेश थानवी
कार्यकारी संपादक :
प्रेम गुप्ता
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-३०२००४
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

सद्भावना सहयोग :
व्यक्तिगत ३५०/- रुपये
संस्थागत वार्षिक
शुल्क ५००/- रुपये
मैत्री समुदाय ३०००/- रुपये

नये साल की राम राम

कल से सीखो, आज के लिए जियो,
कल के लिए आशा करो।।

–अल्बर्ट आइंस्टीन

मित्रो, यह साल बड़े इंतजार के बाद आया है। हमें इंतजार था कि नये साल में सब कुछ ठीक होगा। हमने नये साल का बड़े धैर्य से इंतजार किया है। बहुत कुछ इन कठिन परिस्थितियों से सीखा भी है। न केवल धैर्य और शांति से जीने की कला सीखी है बल्कि सीमित साधनों में धैर्य धारण करके कठिन चुनौतियों का सामना भी किया है। मन को यह विश्वास भी दिलाया है कि सीमित साधनों में भी खुश होकर जिया जा सकता है। अब नये साल का इंतजार खत्म हुआ। इस नये साल में हमें बहुत सारे इंतजाम करने हैं।

सबसे पहली बात हमें यह ध्यान में रखनी है कि असंवेदनाओं का जो पहाड़ आज हमारे सामने खड़ा हो गया है, उसे रिश्तों की गर्माहट से, प्यार से सींचना है। प्राणी मात्र के प्रति संवेदना रखनी है। उसे मिठास से भर देना है ।

नया साल अपने साथ नए अवसर लाता है। या तो हमें नये लक्ष्य बनाने हैं या अपने लक्ष्य को और अधिक उत्साह के साथ पूरा करने में लग जाना है।

मित्रो, नया साल आशा और नवीनता का समय है। हम एक और साल पीछे छोड़ आए हैं और अगले एक में आगे बढ़ रहे हैं। हम भवानी प्रसाद मिश्र की इन पंक्तियों को साथ लेकर चलें तो हमारे लिए बेहतर होगा।

नये वर्ष में नई पहल हो।
कठिन ज़िंदगी और सरल हो।।
अनसुलझी जो रही पहेली।
अब शायद उसका भी हल हो।।
जो चलता है वक्त देखकर।
आगे जाकर वही सफल हो।।
नये वर्ष का उगता सूरज।
सबके लिए सुनहरा पल हो।।
समय हमारा साथ सदा दे।

कुछ ऐसी आगे हलचल हो।।
सुख के चौक पुरें हर द्वारे।
सुखमय आँगन का हर पल हो।।

इस प्रार्थना के साथ नये वर्ष में पहला कदम रखना है और यह बात भी भूलने की नहीं है कि यह सृष्टि सदा प्रसवा है। यहां हर क्षण हर प्रतिपल सब कुछ बदल रहा है।

हर रोज नवीनता है और इस नवीनता को हमें धारण करना है, यही हमारा सौंदर्य है। यह नदी की तरह बहता रहता है।

यह समय है खुद को तराशने का। शांति, प्रेम और आनंद की दुनिया बनाने का। आज हम ऐसे मोड़ पर खड़े हैं, जहां से हमें समाधान के रास्ते तलाशने हैं। यह आपदा हमें जीवन के प्रति एक नया संदेश देने आई है। यह संदेश है जय जगत का, मानव के कल्याण का। यह समय है खुद ही विघ्न विनाशक बनने का और खुद को हरसंभव प्रसन्न रखने का, जिसकी तलाश आज हम सबको है।

नई सुबह, नया जीवन हर पल हर क्षण निखारे अपने को। खिल-खिल जाए जीवन सारा यह फूलों की तरह । महक उठे हर प्राणी। ऊर्जावान स्फूर्तिवान बनें हम। हर दिन देखें कि अपने आपसे कितना आगे बढ़े हम।

बेहतर जीवन के लिए बेहतर काम करना है। प्रतिबद्ध होना है खुद के लिए और इस जगत और समाज के लिए।

सत्यम शिवम सुंदरम। सत्य हमारा जीवन हो। जीवन शिव समान हो। यह जीवन सुंदर हो। सत्य पर आधारित हो।

आलस सबसे बड़ा शत्रु है हमारा। नए संकल्प करें हम अपनों के लिए। हर सुबह पूछें अपने आप से क्या जीवन यूं ही आलस में बिताने का नाम है या रोजाना के काम कर लेना ही जीवन है? औरों के लिए जीना तथा समाज को, देश और जगत को सुखी बनाने का नाम है यह जीवन। उद्देश्य हमारा सबको साथ लेकर चलना है, सबको सुखी बनाना है। खुद आलोक से भर जाना और सबको आलोकित करना जीवन का मूल आधार है।

खुद से प्रश्न करना कि क्या हम सही मायने में मनुष्य हैं। हमें मनुष्य कहलाने का अधिकार है जबकि हममें मनुष्यत्व, इंसानियत, मानवता रत्ती भर भी ना हो। चलिए बन जाते हैं हम खुद के डॉक्टर खुद। देखते हैं अंदर के डॉक्टर को। जब हमारे अंदर का डॉक्टर जाग जाएगा तो सारी समस्याएं कितनी भी जटिल हों, उनका समाधान अवश्य ही हो जाएगा। हमें खुद से ही संकल्प करने हैं। ऐसे संकल्प जिनसे खुद का, समाज, देश और जगत का कल्याण हो। कुछ देर के लिए हम भूल जाएं कि हमें इस दुनिया से क्या चाहिए? पहले यह तय करें कि हमें खुद क्या चाहिए और हमारे अंदर क्या है? बहुत से प्रश्न हमें खुद से ही करने हैं। यह समय खुद को प्रसन्न रखने का है। ❑ **–प्रेम गुप्ता**

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०

राजेन्द्र चौधरी

❑

नई शिक्षा नीति में सरकार अनिवार्य स्कूली शिक्षा तक की जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं है तो उच्च शिक्षा को निशुल्क या सस्ती या सर्व सुलभ बनाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। नई शिक्षा नीति में शिक्षा का निजीकरण किया जा रहा है।

आज सरकारी स्कूल मात्र गरीबों के लिए प्रवेश के द्वार रह गए हैं पड़ोस के स्कूल बंद करने का निर्णय छोटे बच्चों पर क्या प्रभाव डालेगा? शिक्षा बच्चे का मौलिक अधिकार है, इसे माता-पिता की आर्थिक जिम्मेदारी के भरोसे नहीं छोड़ सकते।

प्रस्तुत आलेख में प्रोफेसर राजेंद्र चौधरी नई शिक्षा नीति की बुनियादी खामियों का विश्लेषण कर रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बोर्ड की परीक्षा कक्षा तीन से लागू करने पर तथा मातृभाषा और शिक्षकों की नियुक्ति जैसे बुनियादी विषयों पर गंभीरता से विचार करने की बात कह रहे हैं। सं.❑

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के दो मुख्य भाग हैं- स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा। हम इन दोनों क्षेत्रों का मूल्यांकन करेंगे। किसी भी नीति की तरह इस शिक्षा नीति में भी कुछ स्वागत योग्य कदम हैं। कुछ कमियां हैं, कुछ बातें छूट गई हैं और कुछ खतरनाक पहलू हैं। हम तीनों पक्षों को चिह्नित करने का प्रयास करेंगे।

काफी समय से एक विषयक कॉलेज जैसे बीएड कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज या बिना विज्ञान संकाय या केवल विज्ञान संकाय के +२ स्कूल तो चल ही रहे थे, पर हाल ही में एक विषयक विश्वविद्यालयों का चलन बढ़ा है। जैसे स्वास्थ्य, खेल, संस्कृत, बागवानी विश्वविद्यालय इत्यादि। ऐसे एक विषयक संस्थानों में छात्रों को समग्र विकास का मौका नहीं मिलता, उनका दृष्टिकोण बहुत सीमित हो जाता है। इसलिए बहुविषयक शिक्षा संस्थान विषयों एवं छात्रों, दोनों के समग्र विकास के लिए आवश्यक हैं। इस कमी को नयी शिक्षा नीति में रेखांकित करते हुए इसे दूर करने का निर्णय लिया गया है। स्कूल को छात्रों तक सीमित न रखकर एक 'सामाजिक चेतना केन्द्र' के तौर पर विकसित करना, कम्पार्टमेंट परीक्षा के साथ स्कूली छात्रों को अंक सुधार हेतु मौका देना, सार्वजनिक एवं स्कूल पुस्तकालयों का विस्तार एवं इनके लिए आवश्यक कर्मचारियों की व्यवस्था, मातृभाषा में शिक्षा को बढ़ावा देने का संकल्प, छात्रों को अपनी रुचि के अनुसार ज्यादा विविध विषयों में से चुनाव का मौका, जैसे कदम स्वागत योग्य हैं।

पर इस नीति में तीन बुनियादी खामियां हैं-कई नुस्खे बिना निदान के सुझाए गए हैं, कई दो मुंही बातें हैं और आम तौर पर पुराने अनुभव से सीख का अभाव है। दावा सभी छात्रों को १२ वीं कक्षा तक 'समतापूर्ण', 'निशुल्क एवं अनिवार्य' शिक्षा उपलब्ध कराने का है, पर कहीं भी यह नहीं स्वीकार किया गया कि इसके लिए आवश्यक संसाधन सरकार उपलब्ध करायेगी यह उसकी जिम्मेदारी है। केवल दिव्यांग बच्चों के संदर्भ में यह माना गया है कि उनकी 'शिक्षा राज्य की जिम्मेदारी है'। जब नयी शिक्षा नीति में सरकार 'अनिवार्य' स्कूली शिक्षा तक की जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं है, तो उच्च शिक्षा को निशुल्क या सस्ती या सर्वसुलभ बनाने की तो आशा ही करना व्यर्थ है। सार्वजनिक खर्च और

प्रबंधन के आश्वासन के स्थान पर जगह-जगह निजी शिक्षा उपक्रम को बढ़ावा देने का आश्वासन दिया गया है। इस संदर्भ में जगह-जगह परोपकारी प्रयासों के साथ निजी लगाया गया है। बार-बार परोपकारी शब्द के बावजूद यह छुपा नहीं है कि सरकार का इरादा निजी शिक्षण संस्थानों को बढ़ावा देना है। इसीलिए यह निर्णय लिया गया है कि 'देश भर में एक निजी और एक सार्वजनिक स्कूल को परस्पर सम्बद्ध किया जाएगा, निजी शिक्षण संस्थान खोलना आसान बनाया जाएगा। (पैरा ३.६) , न केवल 'लागत की उचित भरपाई' की व्यवस्था का आश्वासन दिया गया है (पैरा १८.१४) अपितु 'उच्चतर (यानी पहले से अधिक) लागत भरपाई' के प्रयास भी किये जायेंगे।(पैरा२६.७) यह इसके बावजूद है कि इस सरकार को 'निजी स्कूलों के द्वारा बड़े पैमाने पर हो रहे शिक्षा के व्यवसायीकरण और अभिभावकों के आर्थिक शोषण की जानकारी है, इस बात की जानकारी भी है कि ये संस्थान 'ऊंचे दामों पर डिग्रियों को बेच रहे हैं।' एक तरफ 'समतापूर्ण' एवं 'निशुल्क' शिक्षा का दावा और दूसरी ओर शिक्षा के निजीकरण के कटु अनुभव की जानकारी के बावजूद, इसको बढ़ावा देने का क्या अर्थ है? क्या इससे कहीं अनुभवों से सीखने की बू आती है? यह दो मुंहा रुख नहीं तो क्या है? यह रेखांकित करना भी जरूरी है कि वर्तमान में सभी निजी स्कूल कागजों में धर्मार्थ/परोपकारी रूप में ही चल रहे हैं।

आज बच्चों पर शिक्षा का दोहरा बोझ है। एक ओर स्कूल और दूसरी ओर ट्यूशन व कोचिंग। न केवल बच्चों से उनका बचपन छिन रहा है, बल्कि स्वतंत्र अध्ययन का मौका भी खत्म हो रहा है। ट्यूशन का तो पूरे दस्तावेज में जिक्र ही नहीं है ओर 'कोचिंग.. की आवश्यकता को समाप्त करने' के लिए सुधार का वादा तो है, पर इस दिशा में कोई भी ठोस कदम इंगित नहीं किए गए हैं। अगर प्रवेश परीक्षाएं केवल १२वीं कक्षा के पाठ्यक्रम एवं परीक्षा प्रणाली तक सीमित हो जाएं एवं इससे बाहर के प्रश्न न पूछे जाएं, तो कोचिंग की आवश्यकता काफी हद तक खत्म हो जायेगी। पर ऐसा सामान्य कदम भी इस नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में नहीं सुझाया गया।

स्कूलों के 'वैज्ञानिक पुनर्गठन' का प्रभावी अर्थ, हर तरह के किन्तु-परन्तु के बावजूद, कम छात्रों वाले स्कूलों को बंद करने का रूप लेता है। विशेष तौर से प्राथमिक स्तर पर पड़ोस के स्कूल बंद करने का निर्णय छोटे बच्चों की शिक्षा पर क्या प्रभाव डालेगा, इसका सहज अंदाजा लगाया जा सकता है।

जहां तक बिना निदान के नुस्खे सुझाने की बात है, इसका बड़ा उदाहरण है प्रति कक्षा कम संख्या वाले स्कूल की समस्या और इससे निपटने के उपाय (अध्याय ७)। एक ओर दावा यह है कि पिछले वर्षों में स्कूलों में दाखिलों का अनुपात बढ़ा है और स्कूल से बाहर रह गए बच्चों के अनुपात में कमी आई है, फिर भी बड़े पैमाने पर (२८ प्रतिशत) सरकारी प्राथमिक स्कूलों में बच्चों की औसत संख्या कम क्यों है? कहीं इसका कारण यह तो नहीं कि सरकारी स्कूलों को छोड़कर बच्चे निजी स्कूलों में जा रहे हैं और सरकारी स्कूल तो गरीब-गुरबा के लिए अंतिम विकल्प के तौर पर रह गए हैं ? इन दोनों घटनाक्रम के बीच कोई संबंध देखने की कोशिश भी सरकार ने नहीं की है, अपितु इस स्थिति को संसाधनों का दुरुपयोग मानते हुए स्कूलों के 'वैज्ञानिक पुनर्गठन' (रैश्नलाइजेशन) का निर्णय लिया है। स्कूलों के 'वैज्ञानिक पुनर्गठन' का प्रभावी अर्थ, हर तरह के किन्तु-परन्तु के बावजूद, कम छात्रों वाले स्कूलों को बंद करने का रूप लेता है। विशेष तौर से प्राथमिक स्तर पर पड़ोस के स्कूल बंद करने का निर्णय छोटे बच्चों की शिक्षा पर क्या प्रभाव डालेगा, इसका सहज अंदाजा लगाया जा सकता है। इसके अलावा इस नीति में 'स्कूल समूह' के बीच शिक्षकों और सुविधाओं के आदान-प्रदान पर भी जोर दिया गया है। अभी भी कभी-कभार आवश्यकता पड़ने

पर एक शिक्षक को हफ्ते के कुछ दिन पास-पड़ोस के दूसरे स्कूल भी भेज दिया जाता है, पर नयी नीति के अनुसार यह अपवादस्वरूप उठाये जाने वाले कदम के बजाय, संसाधनों के सदुपयोग के लिए एक सामान्य व्यवस्था हो जायेगी। जिनको जमीनी धरातल का जरा भी आभास है, वे एक स्कूल द्वारा दूसरे स्कूल की प्रयोगशाला, पुस्तकालय, अध्यापक इत्यादि के उपयोग की संभावना को नकार कर हर स्कूल के लिए आवश्यक संसाधनों और अध्यापकों की व्यवस्था पर जोर देंगे।

कुछ लोग यह सवाल उठा सकते हैं कि क्या सरकार के लिए अपने स्तर पर सभी बच्चों के लिए निशुल्क स्कूली शिक्षा और सस्ती उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना संभव है? अगर हम मानते हैं कि 'शिक्षा एक सार्वजनिक सेवा है' जिसका फायदा केवल शिक्षित व्यक्ति को न मिलकर समाज को भी मिलता है, और अगर हम यह मानते हैं कि शिक्षा 'प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार' है, और सुखद बात यह है कि नयी शिक्षा नीति ऐसा करती है, तो सरकार/समाज को यह जिम्मेदारी उठानी ही होगी और इसे मां-बाप की आर्थिक क्षमता के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। जहां तक इसकी व्यावहारिकता की बात है, अधिकांश विकसित देशों में अपने नागरिकों के लिए ये सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। अभी कुछ वर्षों पहले तक तो बहुत से देशों में स्कूली शिक्षा छोड़ो, उच्च स्तरीय शिक्षा भी लगभग पूरी तरह निशुल्क होती थी। (हालांकि पिछले कुछ वर्षों में बाजारवाद की आंधी में वहां भी शिक्षा का निजीकरण हुआ है।)

नयी शिक्षा नीति के कुछ खतरनाक पहलुओं पर चर्चा करने से पहले इसकी कुछ अन्य महत्वपूर्ण

अगर हम मानते हैं कि शिक्षा एक सार्वजनिक सेवा है' जिसका फायदा केवल शिक्षित व्यक्ति को न मिलकर समाज को भी मिलता है, और अगर हम यह मानते हैं कि शिक्षा प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार' है, और सुखद बात यह है कि नयी शिक्षा नीति ऐसा करती है, तो सरकार/समाज को यह जिम्मेदारी उठानी ही होगी और इसे मां-बाप की आर्थिक क्षमता के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। जहां तक इसकी व्यावहारिकता की बात है, अधिकांश विकसित देशों में अपने नागरिकों के लिए ये सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। अभी कुछ वर्षों पहले तक तो बहुत से देशों में स्कूली शिक्षा छोड़ो, उच्च स्तरीय शिक्षा भी लगभग पूरी तरह निशुल्क होती थी।

चूकों या कमियों को चिह्नित करना आवश्यक है। हालांकि शब्द तो 'त्रिभाषा फॉर्मूला' प्रयोग किया गया है पर विवरण से स्पष्ट है कि जो लागू किया जा रहा है वो है तीन भाषाओं की शिक्षा। त्रि-भाषा फॉर्मूला में समझ यह थी कि हिन्दी एवं अंग्रेजी के अलावा उत्तर भारत के लोग दक्षिण की एक भाषा सीखेंगे, और दक्षिण भारत के निवासी अपनी मातृभाषा और अंग्रेजी के साथ हिन्दी सीखेंगे। परन्तु तीन भाषाओं में से दो के भारतीय होने की अनिवार्यता और नयी शिक्षा नीति में संस्कृत को दिए जाने वाले अतिरिक्त महत्व के चलते, इसका प्रभाव यह होगा कि आम तौर पर उत्तर भारतीय लोग दक्षिण भारत की कोई भाषा नहीं सीखेंगे (जो वो अब भी नहीं सीखते।) जो 'त्रि-भाषा फॉर्मूला' की भावना के अनुरूप नहीं होगा और इसकी दक्षिण भारत में भी ऐसी ही प्रतिध्वनि जारी रहेगी। इसी तरह जगह-जगह 'मौलिक कर्तव्यों' की शिक्षा को तो जरूरी बताया गया है पर शिक्षण में 'मौलिक अधिकारों' की जानकारी भी दी जानी चाहिए, इसका जिक्र एक बार भी नहीं आया।

उच्च शिक्षा में मसलन स्नातक स्तर के ४ वर्ष के पाठ्यक्रम में हर वर्ष के बाद प्रमाण-पत्र (जैसे सर्टिफिकेट या डिप्लोमा) सहित निकासी का प्रावधान किया गया है। एक बहु वर्षीय पाठ्यक्रम अपने आप में जुड़ा होता है, और उसके हर वर्ष का पाठ्यक्रम अपने आप में रोजगार

या शिल्प हेतु पर्याप्त प्रशिक्षण या योग्यता प्रदान नहीं करता। उदाहरण के लिए, चार वर्षों के चिकित्सक के पाठ्यक्रम का एक साल पूरा करने का यह मतलब नहीं है कि चौथाई (शरीर के) चिकित्सक बन गए या आप चिकित्सक तो नहीं, पर नर्स या प्रयोगशाला कर्मी बनने लायक हो गए हैं। ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं जो दिखाते हैं कि इस दस्तावेज को बहुत गंभीरता से तैयार नहीं किया गया। तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम और ओड़िया भाषा की पढ़ाई का जिक्र है, पर पड़ोस की बांग्ला को छोड़ दिया गया है। विदेशी भाषाओं में थाई और पुर्तगाली तक की पढ़ाई की व्यवस्था तो होगी, पर चीनी भाषा का जिक्र नहीं है। वर्तमान में भारत का चीन से विवाद चल रहा है, पर इसका मतलब यह तो नहीं कि हम इतने बड़े देश की भाषा को ही नकार दें।

पैरा २.१ में इस बात पर बहुत चिंता जताई गई है कि प्राथमिक स्कूलों के ५ करोड़ से अधिक विद्यार्थी 'भारतीय' अंकों में जोड़-घटाव करने में भी सक्षम नहीं हैं। ये भारतीय अंक क्या होते हैं और उन में जोड़-घटाव आना क्यों इतना बड़ा मुद्दा है कि उसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शामिल किया जाए? एक तरफ रट्टा लगाने को हतोत्साहित करने की इच्छा है और दूसरी ओर स्कूली परीक्षा में 'बहुविकल्पीय' प्रश्नों को स्थान देने का निर्णय किया गया है जहां केवल निशान लगाना होगा। 'बहुविकल्पीय' प्रश्नों का प्रयोग दो कारणों से किया जाता है- एक मूल्यांकन को शीघ्र निपटाने के लिए और दूसरा मूल्यांकन को 'व्यक्ति निष्पक्ष' बनाने के लिए, वरना तो बहुविकल्पीय प्रश्न नकल और रटंत को बढ़ावा देते हैं ।

ये तो थीं कुछ चूकें, कुछ खामियां। इनमें से कई तो पहले से चली आ रही हैं। पर इन को दूर न करने की भूल के अलावा नयी शिक्षा नीति में कुछ खतरनाक कदम भी सुझाए गए हैं। अब कक्षा ३, ५ और ८ के बाद भी बोर्ड/बाह्य (उपयुक्त प्राधिकरण द्वारा संचालित) परीक्षा होगी। कहां ८ वीं कक्षा तक फेल न करने की नीति थी और अब कक्षा ३ से बोर्ड परीक्षा शुरू हो जायेगी।

क्या यह बच्चे के साथ अन्याय नहीं होगा? क्या यह उस बुनियादी कारण, जिसके चलते मातृभाषा में शिक्षण को अहमियत दी जाती है, को नकारना नहीं होगा? एक बार बच्चा 'सीखना सीख' जाए, अपनी मातृभाषा पर उसकी पकड़ मजबूत हो जाए, तो फिर वह कोई भी विषय और कोई भी भाषा सीख सकता है। इसलिए अन्य भाषाओं को कक्षा ३ से सिखाना न केवल अनावश्यक है अपितु यह बच्चे पर अनावश्यक बोझ भी है। नयी शिक्षा नीति में ०-३ वर्ष के बच्चों के लिए भी 'उत्कृष्ट पाठ्यक्रम और शैक्षणिक ढांचे' का प्रारूप विकसित करने के प्रस्ताव हैं। पर ३-६ साल के बच्चों के लिए तो औपचारिक शिक्षा व्यवस्था लागू ही करने का निर्णय है। भले ही आज एकल परिवार के कामकाजी अभिभावक जल्दी से जल्दी काम पर लौटने के चलते बच्चे को छोटी उम्र में ही घर से निकालने को तैयार हों, पर हमें शिशु विशेषज्ञों से भी पूछना चाहिए। भारत के शिशु विशेषज्ञ चिकित्सकों के संघ की सिफारिश तो ४/५ साल की है। इसलिए ही परम्परागत व्यवस्था ६ साल की उम्र में दाखिले की थी। यह सही है कि शिशु के मस्तिष्क का अधिकतम विकास प्रारंभिक वर्षों में ही होता है, पर इसका यह अर्थ तो नहीं है कि उस पर औपचारिक शिक्षा का बोझ जल्दी से जल्दी डाल दिया जाए। बिना स्कूल गए भी बच्चा बहुत कुछ सीखता है।

हालांकि नयी शिक्षा नीति में अध्यापकों के रिक्त पदों पर चिंता व्यक्त की गई है, पर ठेका या अतिथि शिक्षक भर्ती सरीखी वर्षों चलने वाली तदर्थ नियुक्तियों इत्यादि पर कोई चर्चा नहीं है और न ही यह वादा किया गया है कि भविष्य में ऐसा नहीं होगा। इसके विपरीत स्कूल एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निश्चित तौर पर कच्ची नौकरियों को बढ़ावा देने की नीति अपनाई गई है। निश्चित तौर पर अमरीका सहित कई देशों में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा होता है, पर उच्च बेरोजगारी वाले देश में ऐसी नीति शिक्षा की गुणवत्ता का भट्ठा बैठा सकती है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जो सबसे बड़ा घातक कदम प्रस्तावित

है, वह है उनके प्रबन्धकीय ढांचे से अध्यापकों एवं छात्रों के निर्वाचित प्रतिनिधित्व को खत्म करना।

इसी प्रकार शिक्षकों की भर्ती में प्रत्यक्ष साक्षात्कार या कक्षा पढ़ाने की व्यवस्था को अतिरिक्त महत्व देने का निर्णय किया गया है। निश्चित तौर पर केवल लिखित परीक्षा अध्यापकों की नियुक्ति के लिए अपर्याप्त है, पर साक्षात्कार के नाम पर होने वाले भेदभाव के चलते ही उच्चतम न्यायालय के निर्देशों पर इनका महत्व पिछले कुछ वर्षों में घटाया गया है। कई संगठनों ने साक्षात्कार की वीडियो रिकॉर्डिंग उपलब्ध कराने की मांग लगातार की है, पर सरकार ने वह मांग नहीं मानी। बिना ऐसे उपायों के साक्षात्कार इत्यादि उपायों को बढ़ावा देना, नियुक्तियों में भ्रष्टाचार को बढ़ावा देना होगा।

कुछ साल पहले विदेशी विश्वविद्यालयों को देश में अपने परिसर खोलने का मौका देने का प्रस्ताव था। कड़े विरोध के बाद इसको निरस्त कर दिया गया था, पर नयी शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा के क्षेत्र को विदेशी विश्वविद्यालयों के लिए खोलने का निर्णय किया गया है। इसका एक ही परिणाम होगा कि अपनी उच्च वित्तीय क्षमता के चलते विदेशी शिक्षण संस्थान न केवल भारत के श्रेष्ठ शिक्षकों को आकर्षित कर लेंगे, अपितु भारत के अभिजात्य वर्ग के छात्र भी वहां चले जायेंगे, और शेष बचे उच्च शिक्षा संस्थानों का भी वही हाल होगा, जो सरकारी स्कूलों का हुआ है। इसके अलावा इन विदेशी शिक्षण संस्थाओं के शिक्षा पाठ्यक्रम भारत की अंदरूनी जरूरतों से संचालित न होकर विदेशी हितों से संचालित होंगे।

जहां तक कॉलेजों को बहु विषयी कॉलेज बनाने का प्रश्न है, यह स्वागत योग्य कदम है, पर हर कॉलेज को स्वतंत्र इकाई बना देना जिस पर किसी विश्वविद्यालय का कोई भी नियंत्रण न हो, चिंता का विषय है।

स्नातक एवं उससे उच्च स्तर के शिक्षा पाठ्यक्रम में परस्पर संबंध होना आवश्यक है। इस संबंध में कोई भी कदम उठाने से पहले, पिछले कुछ वर्षों से चल रहे स्वायत्त कॉलेजों के अनुभव की समीक्षा जरूरी है। ऐसी कोई समीक्षा की गई है, ऐसा इस दस्तावेज में प्रतिबिंबित नहीं होता।

शिक्षकों की भर्ती में प्रत्यक्ष साक्षात्कार या कक्षा पढ़ाने की व्यवस्था को अतिरिक्त महत्व देने का निर्णय किया गया है। निश्चित तौर पर केवल लिखित परीक्षा अध्यापकों की नियुक्ति के लिए अपर्याप्त है, पर साक्षात्कार के नाम पर होने वाले भेदभाव के चलते ही उच्चतम न्यायालय के निर्देशों पर इनका महत्व पिछले कुछ वर्षों में घटाया गया है।

संभवत: नयी शिक्षा नीति का मूलमंत्र 'आमूल-चूल परिवर्तन' का रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि नोटबंदी, तालाबंदी सरीखी धमाकेदार हतप्रभ करने वाली नीति बनाने का उद्देश्य रखा गया है। पेंडुलम सरीखे कुछ बदलावों का जिक्र ऊपर आ चुका है, इसके अलावा कितने ही नए संस्थान एवं ढांचे प्रस्तावित हैं। शिक्षा निदेशालय, शिक्षा बोर्ड, एससीईआरटी इत्यादि के अलावा अब हर राज्य में एक 'राज्य विद्यालय मानक प्राधिकरण (एसएसएसए) भी होगा। चार बल्कि पांच तरह के स्कूल हो जायेंगे एवं खंड एवं जिला स्तर के अलावा स्कूल के ऊपर एक 'स्कूल समूह' स्तर भी होगा। पांच से दस किलोमीटर में फैला यह 'स्कूल समूह' एक विकेंद्रीकृत स्वतंत्र निर्णय की इकाई के तौर पर प्रस्तावित किया गया है, पर पुराने अनुभव के आधार पर संभावना यही है कि यह विकेंद्रीकृत निर्णय की इकाई न होकर निर्णय प्रक्रिया में एक अतिरिक्त परत बन जाएगा। राष्ट्रीय स्तर के नए संस्थानों में शामिल है 'आधारभूत साक्षरता एवं संख्यात्मकता पर एक राष्ट्रीय मिशन' यानी छोटे बच्चों को गिनती और पढ़ना सिखाने के लिए भी एक राष्ट्रीय मिशन होगा। इसके अलावा नए राष्ट्रीय संस्थानों में शामिल होंगे 'राष्ट्रीय मूल्यांकन', परख (समग्र विकास के लिए ज्ञान

का प्रदर्शन मूल्यांकन, समीक्षा और विश्लेषण) कॉलेज और विश्वविद्यालयों को 'सलाह देने का राष्ट्रीय मिशन' राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच (एनईटीएफ) जो देश को ऑनलाइन शिक्षा देने हेतु तकनीकों को उपलब्ध कराएगा इत्यादि। इन सबके अलावा उच्च शिक्षा हेतु यूजीसी के स्थान पर चार नए संस्थान खड़े किये जायेंगे जो पूरे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नियामक की भूमिका निभायेंगे, पर कानूनी शिक्षा और चिकित्सकीय शिक्षा इनके अधिकार क्षेत्र से बाहर होगी। इसके साथ ही भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् जैसे सभी संस्थान अपने पुनर्गठित स्वरूप में पहले की तरह काम करते रहेंगे। इस प्रकार 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) जैसे संस्थान पूर्ववत शोध हेतु वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराते रहेंगे, पर एक राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन (एनआरएफ) अलग से स्थापित किया जाएगा। इतने सारे नए सरकारी संस्थान निर्णय और नियामक व्यवस्था को सुगम बनाएंगे, इसकी संभावना बहुत कम है। ज्यादा संभावना यही है कि पूरी व्यवस्था और जटिल एवं और ज्यादा गैर-जिम्मेदार बन जायेगी क्योंकि इनमें से कोई भी संस्थान शिक्षा की दुर्गति की जिम्मेदारी लेने से बच जाएगा और इनके बीच तकरार की संभावना को तो सरकार ने दस्तावेज में स्वीकार ही किया है।

'आमूल-चूल परिवर्तन' करने की कोशिश ने कई तरह की जटिलता पैदा कर दी है। ४ साल का बीए भी होगा और ३ साल का भी, २ साल का एमए भी होगा और १ साल का भी। पीएचडी में दाखिला एमए के बाद भी होगा और बीए के बाद भी। मेरे शैक्षिक जीवन काल में एमफिल शुरू भी हुई और अब उसे खत्म करने का निर्णय भी ले लिया गया है। अब पीएचडी के लिए पढ़ाना भी जरूरी कर दिया गया है, जबकि हमें एमए में हमसे केवल एक साल वरिष्ठ छात्रों ने मात्र एमए करने के बाद पढ़ाया था, और अच्छा पढ़ाया था। ढंग से पढ़ाई हो तो एक बार की पढ़ाई और एक परीक्षा ही काफी है और ढंग से न पढ़ाई हो तो कितनी ही परतें बढ़ा लें और कितनी ही परीक्षा ले लें, काम नहीं बनने वाला। नयी शिक्षा नीति में जगह-जगह शिक्षा की समाज में भूमिका का जिक्र है, पर एक जगह भी इस बात का जिक्र नहीं है कि सामाजिक-राजनैतिक परिवेश भी शिक्षा पर प्रभाव छोड़ते हैं। नयी शिक्षा नीति में इस पर खेद जताया गया है कि मुख्यधारा या तकनीकी शिक्षा के मुकाबले व्यावसायिक शिक्षा का दर्जा दोयम स्तर का है। व्यावसायिक शिक्षा के इस कमतर दर्जे का लोहार, प्लम्बर आदि को मिलने वाले कम भुगतान और कमतर सामाजिक सम्मान से भी कोई संबंध है, इसका कहीं अहसास भी नहीं है। बिना शिक्षा और समाज के परस्पर प्रभाव की समझ के, बनाई गई शिक्षा नीति से शिक्षा का उद्धार नहीं होने वाला। बिना इस परस्परता के अहसास के, पेंडुलम सरीखे नए बदलाव काफी नुकसान करने का माद्दा रखते हैं। जब तक सबके लिए एक समान गुणवत्ता की सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था जो सार्वजनिक संसाधनों पर निर्भर हो, को हर बच्चे और बच्चे और युवा के नैसर्गिक मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक अमीरी-गरीबी की बढ़ती खाई की तरह शिक्षा की खाई भी बढ़ती रहेगी। नयी शिक्षा नीति ने जुमलों के बावजूद इस दिशा में कोई ठोस नयी पहलकदमी नहीं की है। इसके बिना, ऊपरी तौर पर 'आमूल-चूल परिवर्तन' करने का प्रयास पहले से जर्जर ढांचे को और नुकसान पहुंचा सकता है।

'आमूल-चूल परिवर्तन' करने की कोशिश ने कई तरह की जटिलता पैदा कर दी है। ४ साल का बीए भी होगा और ३ साल का भी, २ साल का एमए भी होगा और १ साल का भी। पीएचडी में दाखिला एमए के बाद भी होगा और बीए के बाद भी।

-भूतपूर्व प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

नरम परवरिश

❑

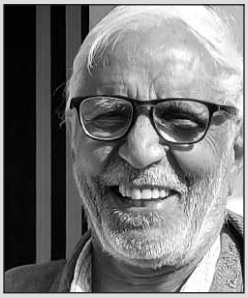

सदाशिव श्रोत्रिय

❑

आज बाजार का आकर्षण इतना बढ़ गया है कि माता-पिता का बच्चों के प्रति प्यार का नजरिया ही बदल गया है। कई जगह यह देखने में आया है कि बच्चों को मनमानी या अपव्यय करने की छूट देना ही प्यार का मतलब हो गया है। माता-पिता की बच्चों के प्रति यह नरमी भविष्य के लिए खतरा बन गई है। आज माता-पिता बच्चों को सामाजिक जिम्मेदारी का कोई काम उन्हें नहीं करने देते। बच्चों को शिष्टता और अनुशासन सिखाना भी उन्हें गलत लगता है। प्रस्तुत आलेख में सदाशिव श्रोत्रिय इसी बात को लेकर चिंता जता रहे हैं कि काम को सहज रूप से नहीं करने पर काम के प्रति बच्चों का नजरिया बदल रहा है। वे उसे खुशी से ना करके सोच-समझकर करने लगे हैं। यहां तक कि स्वयं के काम को बोझ समझ कर करने लगे हैं। इसके कारण उनमें पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्य के प्रति उपेक्षा का भाव जाग रहा है। सं. ❑

यह प्रश्न मेरे मन में बार-बार आता है कि बच्चों के लालन-पालन में आजकल माता-पिता का जो अतिरिक्त ममत्व और मोह देखने में आता है, वह इन बच्चों के लिए कल्याणकारी भी है या नहीं। उदाहरणार्थ जो माता अपनी १५-१६ साल की किसी पुत्री को (ख़ास तौर पर इस कोरोनाकाल में, जबकि उसका घूमना-फिरना भी काफ़ी प्रतिबन्धित है) सुबह ११ बजे तक सोने देती है, उसके दूध का गिलास ऊपर की मंज़िल पर स्थित उनके कमरे तक स्वयं दे आती है, उसे चाय बनाने तक का प्रशिक्षण नहीं देती और दिन भर उसे मोबाइल फोन से चिपके रहने देती है। क्या एक माता के रूप में अपने कर्तव्य का ठीक से पालन कर रही है? इसी तरह वे माता-पिता जो अपने सात-आठ साल के बच्चे को उसके तमाम खाली समय में टीवी के किसी कार्टून चैनल के सामने बैठा रहने देते हैं या अपने मोबाइल फोन पर बराबर कोई नया गेम खेलने की स्वतंत्रता दे देते हैं (जिससे कई बार वह अपने परिवार के वास्तविक सदस्यों के बजाय अपने आपको कार्टून चैनल के अवास्तविक पात्रों के अधिक निकट महसूस करने लगता है) कहीं इस बच्चे के उपयुक्त समाजीकरण के अपने आवश्यक कर्तव्य की उपेक्षा तो नहीं कर रहे हैं?

खाने-पीने के संबंध में भी बच्चों पर किसी तरह का नियंत्रण आजकल कई माता-पिताओं को अनावश्यक लगता है। उनमें घर के बने शुद्ध, ताज़ा और स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन करने की आदत डालने के बजाय वे उन्हें उन बाज़ार-बलों का शिकार बनने देते हैं जो उन्हें स्वास्थ्य की कीमत पर स्वाद से लुभाने की कोशिश करते हैं। आज बहुत सा कई दिन पहले बना जंक फूड बच्चों का प्रिय खाद्य बनता जा रहा है जबकि हमारे बहुत से स्वादिष्ट और पोषक पारम्परिक ताज़ा व्यंजन अधिकांश परिवारों से बाहर होते जा रहे हैं। बाज़ार तो लगातार यह जानने की कोशिश में ही लगा रहता है कि वह बच्चों को किन-किन नए तरीकों से

शेष पृष्ठ १६ पर...

मंगलेश डबराल की कविताएं

वर्णमाला

मैं लिखना चाहता हूं
अ से अनार और अ से अमरुद
लेकिन लिखने लगता हूं
अ से अनर्थ अ से अत्याचार
कोशिश करता हूं
क से कलम या करुणा लिखूं
लेकिन मैं लिखने लगता हूं
क से क्रूरता क से कुटिलता

अभी तक ख से खरगोश लिखता आया हूं
लेकिन ख से अब किसी खतरे की आहट होने लगी है
मैं सोचता था
फ से फूल ही लिखा जाता होगा,
बहुत सारे फूल
घरों के बाहर, घरों के भीतर,
मनुष्यों के भीतर
लेकिन मैंने देखा
तमाम फूल जा रहे थे जालियों के गले में
माला बन कर डाले जाने के लिए

कोई मेरा हाथ पकड़ता है और कहता है
भ से लिखो भय जो अब हर जगह मौजूद है
द दमन का और प पतन का संकेत है
आतताई छीन लेते हैं हमारी पूरी वर्णमाला
वे भाषा की हिंसा को बना देते हैं समाज की हिंसा
ह को हत्या के लिए सुरक्षित कर दिया गया है
हम कितना ही हल और हिरन लिखते रहें
वे ह से हत्या लिखते रहते हैं हर समय। ❑

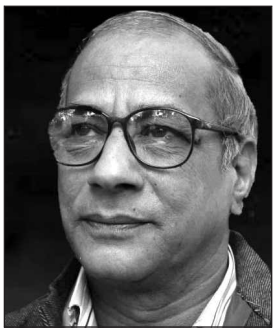

इन ढलानों पर वसंत आयेगा

इन ढलानों पर वसंत आयेगा
हमारी स्मृति में
ठंड से मरी हुई इच्छाओं को
फिर से जीवित करता
धीमे-धीमे धुंधुवाता ख़ाली कोटरों में
घाटी की घास फैलती रहेगी रात को
ढलानों से मुसाफ़िर की तरह
गुज़रता रहेगा अंधकार
चारों ओर पत्थरों में दबा हुआ मुख
फिर से उभरेगा झांकेगा कभी
किसी दरार से अचानक
पिघल जाएगा जैसे बीते साल की बर्फ़
शिखरों से टूटते आएंगे फूल
अंतहीन आलिंगनों के बीच एक आवाज़
छटपटाती रहेगी
चिड़िया की तरह लहूलुहान ❑

भूलने का युग

याद रखने पर हमला है और भूल जाने की छूट है
मैं अक्सर भूल जाता हूं नाम
अक्सर भूल जाता हूं चेहरे
एक आदमी मिलता है बिना चहरे का एक नाम
एक स्त्री मिलती है बिना नाम का एक चेहरा
कोई पूछता है आपका नाम क्या है
उसे यकीन नहीं होता
जब मैं भूला हुआ कुछ याद करने की कोशिश करता हूं
कुछ देर किसी के साथ बैठता हूं
तो याद नहीं आता उसका नाम
जो कभी झंडे की तरह फहराता था उस पर
उसका चेहरा लगता है
जैसे किसी अनजान जगह की निशानदेही हो

यह भूलने का युग है जैसा कि कहा जाता है
नौजवान भूलते हैं अपने माताओं-पिताओं को
चले जाते हैं बड़ी-बड़ी गाड़ियों में बैठकर
याद रखते हैं सिर्फ वह पता वह नाम
जहां ज्यादा तनख्वाहें हैं
ज्यादा कारें, ज्यादा जूते और ज्यादा कपड़े हैं
बाजार कहता है याद मत करो
अपनी पिछली चीजों को पिछले घर को
पीछे मुड़ कर देखना भूल जाओ
जगह-जगह खोले जा रहे हैं नये दफ्तर
याद रखने पर हमले की योजना बनाने के लिए
हमारे समय का एक दरिंदा कहता है
मेरा दरिंदा होना भूल जाओ
भूल जाओ अपने सपने देखना
मैं देखता रहता हूं सपने तुम्हारे लिए। ❑

मंगलेश की
कई किताबों में से एक यह भी है

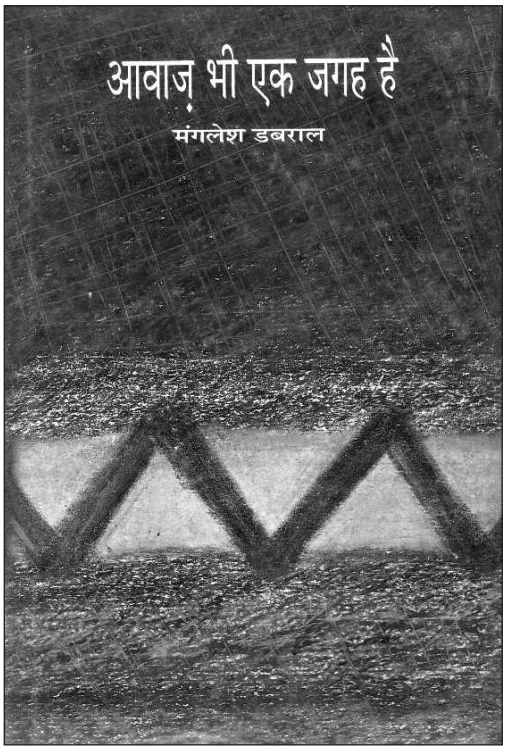

मिशन
ताना-बाना

नवम्बर २०२० के अंक में हमने मिशन ताना-बाना के बारे में विस्तार से लिखा था और यह भी लिखा था कि हम मिशन ताना-बाना में क्या करेंगे? कैसे करेंगे? घर-घर में स्वावलम्बन और हर घर में पोथी घर एवं ग्राम संखी संवाद आदि का विस्तार से जिक्र भी किया था।

पाठकों की जानकारी के लिए हम फिर स्पष्ट कर रहे हैं कि मिशन ताना-बाना एक सपना है। सपने के समान एक आह्वान है। हम अकेले नहीं हैं, बल्कि हमारे साथ भारत के विभिन्न राज्यों में कई लोग हैं जो मिशन ताना-बाना जैसा ही काम कर रहे हैं अथवा करने को तैयार हैं। पूरे देश में हम ऐसे मित्रों का एक व्यापक कुटुम्ब बनाएंगे और वे सब एक ही दिशा में समानधर्मी मित्रों की तरह सेवारत रहेंगे। समाज के प्रति समर्पित भावना के साथ और समाज के जीर्ण-शीर्ष होते तान-बाने को रफ्फू करने का काम करते रहेंगे।

शेष अगले पृष्ठ पर...

पृष्ठ १३ से आगे...

लुभा सकता है। वह किसी महंगी चॉकलेट के साथ कोई ऐसा छोटा सा खिलौना रख देता है जो पानी में डालने पर रंग बदल लेता है। उसने यह पता लगा लिया है कि इस रंग बदलने वाले खिलौने के लिए हर समृद्ध मां-बाप का बच्चा ज़िद करेगा और उस महंगी चॉकलेट की बिक्री बढ़वाएगा। इसी तरह शिक्षा के बाज़ार को यह पता है कि हर समर्थ माता-पिता का बच्चा अब अपने लिए प्राइवेट ट्यूशन की ज़रूरत महसूस करेगा, कोचिंग के लिए कोटा या किसी अन्य शहर में जाना चाहेगा। इस कोचिंग के बाद भी यदि उसका प्रवेश उसकी इच्छित संस्था में संभव न हुआ तो डोनेशन के नाम पर अपने माता-पिता से लाखों रुपये खर्च करवाना चाहेगा। यदि वे इसके लिए राज़ी न हुए तो वह मान लेगा कि उसके माता-पिता को उससे प्यार नहीं है। बच्चों के लिए प्यार का मतलब ही अब उन्हें मनमानी करने की या मनमाना अपव्यय करने की छूट देना होता जा रहा है।

मां-बाप की अपने बच्चों के प्रति इस प्रकार की नरमी वस्तुत: इन बच्चों के भविष्य के लिए कई ख़तरे लेकर आती है। मानव-जीवन में किसे अपनी इच्छित हर चीज़ मिल पाती है? इसीलिए जो माता-पिता अपने बच्चों को अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करना और अपनी नाकामयाबियों को सहज भाव से लेना नहीं सिखाते हैं, वे निश्चय ही उन्हें इंसानी ज़िन्दगी के लिए ठीक से तैयार नहीं कर रहे होते हैं।

अपने बच्चे को अनुशासन या शिष्टता सिखाना भी अब बहुत से माता-पिता को अपना आवश्यक कर्तव्य नहीं लगता। कई माता-पिता बच्चों को उनके साथ बदतमीज़ी से पेश आने पर भी डांटने में संकोच करते हैं और उसके प्रति कठोरता बरतने के बारे में भी आपस में एकमत नहीं हो पाते। माता-पिता के बीच इस मतभेद को भांप कर बच्चा भी कई बार माता या पिता का भावनात्मक ब्लैकमेलिंग करने लगता है। वस्तुत: अपने बच्चे को तमीज़ न सिखा कर ये माता-पिता अपने बच्चों के प्रति एक आवश्यक पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्य की उपेक्षा कर रहे होते हैं जिसके कारण इन बच्चों को बड़े होकर कई तरह के कष्ट या नुकसान उठाने पड़ सकते हैं। अपने बच्चे द्वारा अर्जित छोटी-छोटी कुशलताओं और सफलताओं को कई माता-पिता आजकल किसी सोशल मीडिया पर इस तरह प्रदर्शित करते हैं जैसे वैसा करके उनके बच्चे ने किसी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया हो। कई माताएं तो अपनी मेहनत और कुशलताओं को भी अपने बच्चे के नाम करने में संकोच नहीं करतीं। इस तरह की हरकतों से उपजने वाले बच्चे के अहंकार को वे निजी शिक्षण-संस्थान भी अतिरिक्त हवा देते रहते हैं जो उनसे किसी 'प्रोजेक्ट' के नाम पर

नया कुछ करवा कर और उसे १०० में से १०० अंक देकर उसके और उसके माता-पिता के अहंकार को तुष्ट करते रहते हैं। कई निजी विद्यालय आए दिन कोई छोटी-मोटी प्रतियोगिता आयोजित करके और कोई खूबसूरत प्रमाणपत्र देकर इन बच्चों का अहंकार (जिसे वे 'आत्मविश्वास' का नाम दे देते हैं) बढ़ाते रहते हैं और इस तरह बच्चों की वास्तविक प्रतिभा के आकलन से उन्हें और उन्के माता-पिता को भी वंचित करते रहते हैं। बड़ी फीस वसूल करने वाले व्यापारिक वृत्ति वाले शिक्षण संस्थानों के संचालकों के लिए इस तरह के हथकंडों का उपयोग एक आवश्यकता बन जाता है क्योंकि इन बच्चों के समृद्ध माता-पिता इन संस्थानों को उनके द्वारा दी जा रही ऊंची फीस की एवज में होने वाली उनके बच्चे की प्रगति के बारे में उनसे निरंतर प्रश्न करते रहते हैं। मैं उन माताओं पर आश्चर्य करता हूं जिनकी बेटियां चाय बनाने या बर्तन जमाने तक में उनकी मदद नहीं करतीं। क्या एक ज़िम्मेदार मां का यह दायित्व नहीं है कि वह अपनी बेटी में उसकी सहायता की आदत डाले और इस तरह उसे एक स्वावलम्बी और दूसरों के लिए उपयोगी इंसान के रूप में विकसित होने में मदद करे? इन माताओं का सामान्य तर्क यह होता है कि जब उनकी बेटियों पर ज़िम्मेदारी आएगी, तब उन्हें काम करना ही पड़ेगा और इसीलिए जब तक संभव है वे उनसे काम न करवा कर क्यों न उन्हें खुश रखें? पर इस संबंध में विचारणीय बात यह है कि जीवनयापन के लिए किए जाने वाले आवश्यक काम को बोझा न समझना तभी संभव है जबकि बच्चों में शुरू से उसकी आदत डाली जाए। काम के बारे में एक स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करना, उसे खुशी-खुशी करना और बोझा न समझना जीवन को अधिक खुशनुमा बनाने में मदद करता है। यदि पशु-पक्षी भी अपने शिशुओं को शीघ्रातिशीघ्र स्वावलम्बी बनाने की कोशिश करते हैं तो ऐसी मोहग्रस्त माताओं का यह कृत्य क्या अप्राकृतिक और अस्वाभाविक नहीं कहा जाएगा।

कुछ मां-बाप मैंने ऐसे भी देखे हैं जिन्हें किसी का उनके बच्चों से कोई काम करवा लेना अच्छा नहीं लगता। 'क्या हमारे बच्चे को अपना नौकर समझा है' जैसा एक भाव इन काम करवा लेने वालों के प्रति उनके मन में बराबर बना रहता है चाहे ये काम करवाने वाले परिवार के कोई बुज़ुर्ग, रुग्ण या कमज़ोर लोग ही क्यों न हों, पहले माता-पिता अपने बच्चों को दूसरों के काम आने की प्रेरणा देते थे। पर अब वे चाहते हैं कि दूसरे तमाम लोग उनके बच्चों के अधिकाधिक काम आएं। दूसरों से काम ले सकना ही उन्हें अब अपने बच्चों की चतुराई और किसी दूसरे का उनसे काम ले लेना अपने बच्चों की मूर्खता लगता है।

माता-पिता की अपने बच्चों के प्रति इस प्रकार की अस्वस्थ नरमी

मिशन
ताना-बाना

पृष्ठ १६ से आगे...

जहां और जिस समाज में मानव मूल्यों का विघटन होता रहे और उनको विघटित करने के कई मनुष्य विरोधी षड़यंत्र भी इधर-उधर लगातार चलते रहें, उस समाज के उधड़ते हुए ताने-बाने को रफ्फू करना कोई आसान काम नहीं है। कबीर जानते थे कि ज्यों की त्यों चादर धर देने में ही मुक्ति है। मगर वे तो निपट अकेले थे। यहां तो पूरे समाज का ताना-बाना जीर्ण-शीर्ण हो गया है। आज ज्यादा उधड़ गया है तब न केवल चिंता का विषय बड़ा हो गया है, बल्कि कई खतरे सिर पर मंडराते दीख रहे हैं।

हमारे सामने रास्ता एक ही है। महाभारत कहता है कि महाजन जिस मार्ग पर चले हैं, वही मार्ग हमारा होना चाहिए। उस मार्ग की ओर कबीर इशारा कर चुके हैं, मगर वे ढाई आखर अभी तक कहीं पहुंच नहीं सके हैं। न दिमाग में न दिल में। मिशन ताना-बाना उन्हीं ढाई आखरों को फिर से पढ़ाने का काम है।

शेष अगले पृष्ठ पर...

मिशन
ताना-बाना

पृष्ठ १७ से आगे...

मिशन ताना-बाना की शुरुआत राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति ने की है। अपने स्तर पर समिति अपनी सहयोगी संस्थाओं की मार्फत मिशन ताना-बाना के काम को आगे बढ़ाने में भी लगी है। मगर सभी सद्भावी संस्थाएं एवं मित्र लोग जो हमारे समानधर्मी सहकर्मी हैं, वे सब अपने-अपने संसाधनों से और अपनी सामर्थ्य के अनुसार वित्त प्रबंध करते हुए इस मिशन को आगे बढ़ाएंगे।

मिशन ताना-बाना के चारों सिरे खुले हैं और इसका प्रबंधक कोई भी कहीं भी नहीं है। चूंकि यह एक आह्वान है तो इस आह्वान के साथ जुड़ने वाले सभी लोगों का स्वधर्म है मिशन ताना-बाना। साथ ही मिशन ताना-बाना इतना खुला कार्यक्रम है कि यहां तथाकथित मॉनिटरिंग की भी कोई व्यवस्था नहीं होगी। हर व्यक्ति उतना ही करेगा जितने में उसे स्वयं कुछ कर पाने का सुख मिल जाए।

शेष पृष्ठ २० पर...

के कारणों का विश्लेषण करते हुए मुझे लगता है कि बच्चों की वैयक्तिकता को पर्याप्त महत्व और सम्मान देने के हमारे समय के पश्चिम से आयातित विचार को अमली जामा पहनाने की कोशिश में वर्तमान पीढ़ी शायद उसके औचित्य की सीमाओं का उल्लंघन करती जा रही है।

मध्यवर्ग की हमारे समय की समृद्धि ने भी शायद इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। जिन बंधनों को किसी पीढ़ी ने कष्ट पाकर भुगता हो, उनसे अपने बच्चों को यथासंभव मुक्त करवाने की उसकी कोशिश सर्वथा स्वाभाविक कही जाएगी। पर यह सब करते हुए उस पीढ़ी को यह नहीं भूलना चाहिए कि अपनी अतिरिक्त नरमी और ढील से वह अपने बच्चों को अकर्मण्य, आलसी, असंवेदनशील, अनैतिक और परोपजीवी न बना दे।

जो माता-पिता अपने बच्चों में आलस्य, अकर्मण्यता, अपव्यय आदि दुर्गुणों को विकसित होते देख कर भी उन्हें रोकने की कोई कोशिश नहीं करते, वे एक तरह से स्वयं उन बच्चों के उन दुर्गुणों के विकास में सहायक बन जाते हैं। बच्चे भी धीरे-धीरे यह जान जाते हैं कि ज़िद करके, रो-धोकर, बदतमीज़ी करके या डरा-धमका कर किस तरह वे अपने मां-बाप से अपनी ग़लत बात भी मनवा सकते हैं।

कंफ़्यूशियस ने कहा था कि किसी समाज को अच्छे नागरिक तभी मिल सकते हैं जबकि बच्चों के माता-पिता उनकी सामाजिक ज़िम्मेदारी का ठीक से निर्वाह करें। उनका कहना था कि 'कोई राष्ट्र अपनी वास्तविक शक्ति परिवारों के खरेपन से ही प्राप्त करता है।' इस दृष्टि से देखने पर मुझे वे मोहग्रस्त माता-पिता किसी दंडनीय अपराध के भागी लगते हैं जो अपने बच्चों को उनकी सामाजिक भूमिका के लिए ठीक से तैयार नहीं करते। ❑

५/१२६ गोवर्द्धन विलास हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,
हिरन मगरी सेक्टर १४, उदयपुर -३१३००१
मोबाइल -८२९०४७९०६३

आवरण पृष्ठ पर ली गई कलाकृति रूबी घोष की है। रूबी बेंगलरु में रहती हैं। शिक्षिका हैं। पिछले कई सालों से विशेष बच्चों को पढ़ा रही हैं। फोटाग्राफी और जेनटेंगलिंग में रुचि रखती हैं।

लिपियों का लेखा जोखा

❑

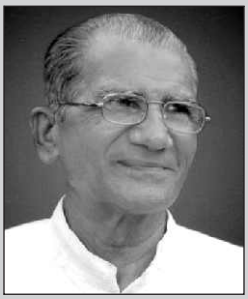

लाभूभाई ग. पटेल

❑

आज हम आजाद देश में रह रहे हैं लेकिन अंग्रेजों की गुलाम मानसिकता वाली मैकाले की शिक्षा को हम नहीं छोड़ पाए हैं। परिणाम हम भुगत रहे हैं। करोड़ों की संख्या में नौकरी चाहने वाले शिक्षित लोग बेकार-निकम्मे हो गए हैं और ऐसे लोग देश में अशांति फैला रहे हैं। भारत के निर्माण के लिए बापू ने नई तालीम पर विचार करने को कहा था। लेकिन हमें यह कहां गवारा था? इस गुलाम मानसिकता ने हमारे समाज को कई स्तर पर विकृत किया है। प्रस्तुत आलेख में शिक्षाविद लाभूभाई ग. पटेल की चिंता भारत की अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी और प्रांतीय भाषाओं से संबंधित है। उनका कहना है कि भारतीय लिपियों में उच्चारण का जो आधार है, वह दुनिया भर में किसी भी लिपि में नहीं है जबकि हम रोमन लिपि पर मुग्ध हैं। रोमन लिपि सरल अवश्य है पर यह छल की भाषा है, भटकाव की भाषा है। सं. ❑

ईस्ट इंडिया कम्पनी के गवर्नर जनरल लॉर्ड बेन्टिक ने भारतीय प्राचीन शिक्षण प्रणाली को बदलकर पश्चिमी रहन-सहन को प्रतिष्ठित करने वाली शिक्षा व्यवस्था गढ़ने के लिए १९३५ में मैकाले को नियुक्त किया। उससे कहा कि ऐसी शिक्षा बनाओ जिससे राज्य चलाने में जरूरी कारकून, अमला और हमारे प्रति वफादार रहने वाला विशाल शिक्षित समुदाय खड़ा हो और हिन्दुओं के अपने सांस्कृतिक मूल्यों से विलग कर गुलामी के रंग से रंगा जा सके।

संयोगवश देश आजाद तो हुआ, पर उस गुलाम मानसिकता गढ़ने वाली मैकाले शिक्षा को हमारे काले अंग्रेजों ने बनाये रखा ही नहीं, अपने बूते पर बढ़ाया। परिणाम हम अब भुगत रहे हैं। करोड़ों की संख्या में नौकरी चाहने वाले शिक्षित बेकार, जो किसी भी काम के लिये निकम्मे हैं, गुमराही बनकर देश की शांति को हानि पहुंचा रहे हैं। भारत के निर्माण के लिए गांधी बापू ने नई तालीमी शिक्षा का विचार दिया था, पर बापू खुद हमारे लिये आउट ऑफ डेट हैं। हमारे विकास की राह में बाधारूप लगते हैं।

इस गुलाम मानसिकता ने हमारे समाज के कई अंगों को विकृत किया है, पर यहां मैं केवल भाषा के क्षेत्र को छूना चाहता हूं। हम भारतीय अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी और प्रांतीय भाषाओं का अद्वितीय वैशिष्ट्य खामखा भूल गये हैं। ब्राह्मीलिपि से निकली भारतीय लिपियों में उच्चार शास्त्र का जो आधार है, दुनिया भर की किसी लिपि में नहीं। फिर भी हमारी गुलाम मानसिकता एक निकम्मी, अनेक खामियों से भरी रोमन लिपि पर मुग्ध है। हम अपने हिन्दी लेखन में भी उस लिपि के शब्दाक्षर जोड़कर लेखन को ज्यादा कीमती खजाना समझ रहे हैं। हमारी लिपि के दन्त्य, मूर्धन्य, तालव्य जैसे क-च-ट-त-प वर्गों में विभाजन, प्रत्येक वर्ग को ही लग सकते ङ-ञ-ण-न-म जैसे अनुनासिक, अल्पप्राण-महाप्राण का सूक्ष्मावलोकन अद्‌भुत है। समास-संधि की रचना अद्वितीय है। उसी की तुलना में रोमन लिपि के अक्षर, क्षमा करें, पाषाण युग की मानसिकता की याद दिलाते हैं।

हमें एक लम्बे अरसे से ऐसे वक्तव्य पढ़ने पड़ रहे हैं कि रोमन लिपि की तुलना में हमारी नागरी

मिशन
ताना-बाना

पृष्ठ १८ से आगे...

मिशन ताना-बाना में गांव-गांव में ग्राम सखी संवाद, घर-घर में स्वावलम्बन और घर-घर में पोथी घर का जिक्र हम कर चुके हैं। इसी शृंखला में तीसरा कार्यक्रम होगा घर-घर में **'बुद्ध- महावीर'।**

घर-घर में बुद्ध-महावीर

इस कार्यक्रम के अंतर्गत ग्राम सखी संवाद में बुद्ध-महावीर के विचारों एवं वचनों पर चर्चा होगी। उनके दिये गये करुणा, क्षमा एवं अहिंसा के संदेश को घर-घर पहुंचाने का प्रयास होगा। इस प्रयास के अंतर्गत बुद्ध-महावीर के उपदेशों एवं जीवन संबंधी किताबों को हर घर में पहुंचाया जायेगा। उनके जीवन की रोचक घटनाओं और उनके महत्वपूर्ण संदेशों को कई विधाओं में प्रकाशित करके हर घर को उनसे परिचित कराया जायेगा। यह सामग्री हर हफ्ते, दो हफ्ते बाद बदल-बदल कर बांटी जाएगी ताकि बुद्ध की करुणा और महावीर की अहिंसा हर परिवार के व्यवहार का हिस्सा बन जाये।

शेष अगले पृष्ठ पर...

लिपि में लिखना-पढ़ना कई गुना- तकरीबन हजार गुना अधिक कष्टदायी और क्लिष्ट है। रोमन लिपि के केवल २६ अक्षर चिह्न सीख लेने पर काम चल जाता है, पर हिन्दी में ३६ मूलाक्षर X १० स्वर चिह्न लगने पर ३६० अक्षर चिह्न सीखने पड़ते हैं। उपरांत जोड़ाक्षरों की झंझट बहुत बड़ी है।

सत्य तो यह है कि हरेक लिपि में प्रत्येक उच्चारित एकम को अपना स्वतंत्र अक्षर चिह्न मिलना जरूरी है और वह एक ही उच्चार प्रकट करता हो। उस उच्चार के लिए कोई दूसरा चिह्न ही न हो। मिसाल के तौर पर क को लें। शब्दकोश में हजारों जगह वह एक ही उच्चार कराता है। वहां कोई दूसरा अक्षर काम नहीं आता। रोमन लिपि में ऐसी निश्चितता नहीं है। उसके हरेक अक्षर का उच्चारण अनिश्चित व विचित्र है। उसके हरेक शब्द को किन अक्षरों से गढ़ना और उसका उच्चार कैसा करना है, वह अक्षर चिह्न पर आधारित नहीं है। किसी पागल ने तय कर दिया हुआ लगता है। इसके प्रत्येक शब्द की अक्षर रचना की स्पेलिंग देखनी पड़ती है।

हिन्दी में ३६X१०=३६० नहीं, ३६+१०=४६ अक्षर चिह्न सीखने पड़ते हैं। स्वरों के १० चिह्न सभी मूलाक्षरों को एक ही रूप (ा-ि-ी-ु-ू) में लगते हैं। तो अब सोचिये, यह ४६ अक्षर सीखना कष्टकर है या हजारों शब्दों के स्पेलिंग जीवन भर देखते रहने पर भी गलतियां करते रहना ज्यादा कष्टकर है? कौन सी स्पेलिंग सही है, इसकी अंग्रेजी में स्पर्धाएं होती हैं। भाषीय लेखन-वाचन तो आम समाज के लिये बिना अवरोधों के चलने का आनंददायी मार्ग है। दौड़ने वालों की स्पर्धा के लिये अवरोधों से भरा रास्ता नहीं। रोमन लिपि ऐसा आनंददायी रास्ता नहीं है। हां, अंग्रेजी भाषा तो राजाधिराज सम्राट जैसी समृद्ध व सम्माननीय है, पर उस सम्राट का वाहन रोमन लिपि रूपी एक एकाक्षी, त्रिपदी, दुर्बल मरियल गधा रखा गया है।

रोमन लिपि में मात्र २६ अक्षर होना उसकी महत्ता नहीं, क्षति है। अपूर्णता है। इसी कारण कई उच्चारों के स्वतंत्र अक्षर नहीं हैं। द और ड के उच्चारण के लिये एक ही अक्षर D है। ण और न के लिए एक ही N, त और ट के लिए एक ही T, ळ और ल के लिये एक ही L, ई और य के लिये एक ही Y, आ और ऐ के लिए दो आवारा अक्षर A व E यहां-वहां घूमते रहते हैं। महाप्राण के १२ अक्षर हैं ही नहीं। बना लेने पड़ते हैं H लगा कर। इसके विपरीत एक ही उच्चार के लिए निकम्मे-अधिक अक्षर भी हैं। क के लिए C K Q तथा व के लिए V और W एक ही म्यान में अधिक तलवारें जैसी हैं।

हिन्दी व्यंजनाक्षरों को लगने वाले स्वर के हिज्जे (काना-मात्रा) के कारण लेखन को संक्षिप्तीकरण का लाभ मिलता है। साढ़े तीन अक्षर का सौराष्ट्र रोमन लिपि में १० अक्षरों में

SAURASHTRA लंबा है। हिन्दी लिपि का पटना हर हालत में पटना ही पढ़ा जाता है। पर PATANA केवल पटना नहीं रहता। पाटणा पटाना, पटाणा जैसे कई उच्चारों में भटकाता है। रोमन लिपि के कारनामे ऐसे हैं।

सरदार वल्लभ भाई पटेल के नाम से विलायत से बैरिस्टरी के लिये प्रवेश पत्र मिल गया था। बड़े भाई विट्ठल भाई उसी नाम से प्रथम बैरिस्टरी कर आये थे। उन दोनों के हमारे राष्ट्र पर बहुत बड़े उपकार हैं, इससे कुछ गलत हुआ नहीं दिखता, पर मानें तो यह छलना हुआ था। ऐसे ही किसी के गोपनीय रहस्य को भयंकर नुकसान पहुंचाया जा सकता है। रोमन लिपि में ऐसी छलनाओं की बड़ी संभावनाएं भरी हैं। उसे मुबारक हो, पर हमारी अपनी लिपि में व.भ. पटेल, वि.भ. पटेल फर्कवाले नाम ऐसे अनर्थों से बचाते हैं।

हमारे जातिगत नाम मानव में हम सभी मानव समा जाते हैं। परन्तु प्रत्येक का व्यक्तिकरण व्यक्तिवाचक नाम से होता है। गोपाल नामधारी तो बहुत होते हैं, पर दलीचंद नामधारी पिता के गोपाल कम मिलेंगे। शायद ऐसा भी कोई मिल जाये, पर उसका सरनेम पंडया ही नहीं होता। नाम के व्यक्तिकरण के लिये अपना, अपने पिता का और सरनेम जोड़ा जाता है। ज्यादातर-बहुत बार नाम एकाक्षर गो.द. पंडया लिखा जाता है। इस क्षेत्र में रोमन लिपि ने तहलका मचाया है। हिन्दी लेखन में भी गो.द. पंडया नहीं, जी.डी.पंडया लिखते हैं। ये अक्षर मूलनाम से बहुत दूर भटकाते हैं। अक्षर गो. वाले कम होते हैं, पर जी (G) ज और ग और घ की विशाल बारह अक्षरी में खो जाता है। हजारों नामों का प्रतिनिधित्व करता है। पिता का नाम डी (D) भी द-ड-ध-ढ की बारह अक्षरी के समुद्र में डूब जाता है। मानों नदी की रेत में गिरा एक मूंग का दाना ढूंढ निकालना हो। फिर भी हमारे सभी पंडया जी.डी. पंडया लिखते हैं क्योंकि उस नाम में कोई साहब दिखता है। गो.द. पंडया होगा कोई मुफलिस।

इस ABCD में लिखने की उद्धताई हमारे अखबारों के प्रत्येक फिकरे में देखी जाती है। छपता है: प्रो. एन.जी. वैद्य ने GPSL की सभा NT और VLC के नियमों के अंतर्गत YGP को कुछ रकम बांटने की KDC को सिफारिश की थी, पर NCP ने उसका घोर प्रतिवाद किया। संस्थाओं, कंपनियों के नाम के प्रथमाक्षर नागरी लिपि में दिये होते तो कुछ समझ में आ सकता था। टेलीविजन के कार्यक्रमों की भी यही हालत है। ABKGS उसमें काम करने वालों को भी समझ में नहीं आयेगा। परंतु अ.भा.खा.ग्रा.सं. (अखिल भारतीय खादी ग्रामोद्योग संघ) थोड़ी पूर्व परिचिती के सहारे समझ में आ जाता है।

जोड़ाक्षर का सवाल बिना स्वर लगे व्यंजन बोला नहीं जा सकता। (श्रीमद् भगवद् गीता के अध्याय १०-३३ में भगवान कृष्ण

मिशन
ताना-बाना

पृष्ठ २० से आगे...

घर-घर में गांधी बापू

इस कार्यक्रम के अंतर्गत घर-घर जाकर गांधी बापू और विनोबा की कुछ बोलती हुई किताबें और गांधी-विनोबा के वचनों के कार्ड अथवा फ्लेक्स बांटे जाएंगे। ग्राम सखियां अपने संवादों में सभी सखियों से गांधी बापू के जीवन की प्रेरणादायक घटनाओं पर चर्चा करेंगी। एक स्तर पर हर गांव में गांधी कथा सुनाने का यह एक संक्षिप्त आयोजन होगा। अपेक्षा यही रहेगी कि बापू की अहिंसा और सत्य पर चलने का संदेश पूरे परिवार के व्यवहार का हिस्सा बन जाये।

बापू ने जो स्वावलम्बन का संदेश दिया और जिस प्रकार अपरिग्रह को अपने जीवन में उतार कर दिखाया उसे सभी परिवारों के सामने ठीक से प्रदर्शित किया जाना चाहिए। बापू ने जो किताबें लिखीं, उन्हें पढ़ने की प्रेरणा भी यह कार्यक्रम देने का भरसक प्रयास करेगा।

शेष अगले पृष्ठ पर...

मिशन
ताना-बाना

पृष्ठ २१ से आगे...

हर घर में संत समागम

मिशन ताना-बाना के अंतर्गत सभी साथियों का एवं देशव्यापी कुटुम्ब के सभी सदस्यों का प्रयास रहेगा कि सभी पंथों एवं सभी धर्मों के संतों की वाणियां घर-घर में गूंजती रहें। पोस्ट कार्ड के आकार में कुछ दोहे, चौपाई एवं पद सभी घरों में पहुंचते रहें। संतों की तस्वीरें भी पहुंचती रहें और उदारता की ओर ले जाने वाले प्रेरणास्पद संदेश भी लोगों के गले उतरते रहें। दादू, रैदास, तुकाराम, कबीर, नानक, मीरा, सहजोबाई, लल्लेश्वरी, समानबाई आदि कई संतों की वाणियां घर-घर में पहुंचती रहें। हर ग्राम सखी संवाद में इन वाणियों पर चर्चा हो और एक-एक संत की प्रेरक वाणी हर ग्राम सखी को याद आती रहे, ऐसा एक विनम्र प्रयास होगा मिशन ताना-बाना के अंतर्गत। यह तभी संभव होगा कि हम जात-पांत भूल जायें, छुआछूत छोड़ दे और हिन्दु-मुसलमान करना बंद करें। ❑

ने कहा है: 'अक्षराणामकारोऽस्मि' अक्षरों में मैं अकार हूं)। स्वर नहीं लगता तो व्यंजन आधा हो जाता है। व्यंजनाक्षर की पाण हटाकर उसे व्यंजनांत बतानेवाली व्यवस्था अत्यंत सरल एवं कम अक्ल के भी समझ में उतनी ही स्पष्ट है। जैसे ख्वाब, ध्यान, श्याम। बिना पाण वाले अक्षर भी अगले अक्षर से छूता हुआ जोड़कर आधा बताना सरल व तर्क संगत है। जैसे क्यों-ज्यों-ट्यूशन-मध्याह्न-परफ्यूम। ये जोड़ाक्षर भी बिना अपवाद वाले नियमबद्ध हैं।

हमारी हिन्दी को रोमन लिपि में लिखना बंद करें। तो वैश्विक भाषा कही जाने वाली अंग्रेजी-हो सके तो और भाषाएं भी नागरी लिपि में लिखने लगें। हमारी लिपि में कुछ सुधार लाना जरूरी है, पर वह फिर कभी। ❑

मु.पो. मालपरा-३६४७३०
मो.९४२८१९६५६८

मिशन
ताना-बाना

एक सार्वजनीन एवं लोकपोषित राष्ट्रव्यापी अभियान का आह्वान

मिशन ताना-बाना न केवल एक सपना है और न कोई प्रकल्प है बल्कि यह एक राष्ट्रव्यापी अभियान है। यह अभियान न किसी सरकारी ढांचे का हिस्सा है और न यह कार्यक्रम है और न यह कोई प्रायोजना है। यह उन सभी समर्पित लोगों का कार्यक्रम है जो विनोबा की भाषा में जीवनदानी बन चुके हैं अथवा जिनका जीवन सामाजिक परिवर्तन को संबोधित है।

इस अभियान की शुरुआत जरूर राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति से हो रही है मगर यह अभियान उन सब लोगों का है जो साम्प्रदायिक सद्भाव एवं भाईचारे के समर्थक हैं। मेरा विश्वास है कि वे सभी लोग अपनी श्रृद्धा एवं अपने पास उपलब्ध संसाधनों से इस अभियान में छोटा या मोटा योगदान देते रहेंगे। वे सभी इस सनातन उक्ति के समर्थक हैं- चिड़ी चोंच भर ले गयी, नदी न घटियो नीर। यह एक विश्वास है और इसी विश्वास में मिशन ताना-बाना जैसे व्यापक अभियान की संपूर्ण संभावना सन्निहित है। ❑

विमला ठकार : आध्यात्मिक ज्ञान दान को समर्पित जीवन

डॉ. अवध प्रसाद

❑

आध्यात्मिक एवं सामाजिक कार्यकर्ता विमला ठकार विलक्षण महिला थीं। उच्च शिक्षा प्राप्त विमला ठाकर का अंग्रेजी, हिंदी, मराठी और गुजराती भाषा पर विशेष अधिकार था। उन्होंने महात्मा गांधी, विनोबा भावे और लोकनायक जयप्रकाश नारायण के विचारों को आत्मसात करने के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया था। उन्हें रामकृष्ण परमहंस जैसे संतों का आशीर्वाद प्राप्त था। विमला ठकार का व्यवहार सब के प्रति स्नेह, प्यार और सहयोग का रहा। अपने जीवन में दूसरों को हमेशा सहयोग देते रहना उनके जीवन का एक हिस्सा था।

उनके अधिकतर व्याख्यान हिमाचल प्रदेश के डलहौजी स्थित स्थल पर होते थे। विदेशों में भी उन्होंने कई व्याख्यान दिए। सं. ❑

आचार्य विनोबा भावे की भूदान पदयात्रा में लाखों लोगों का सहयोग रहा। इस आंदोलन में सैकड़ों विदुषी महिलाओं ने अपना जीवन समर्पित किया। इनमें सुश्री विमला ठकार का नाम अग्रगण्य है। वे आध्यात्मिक और सामाजिक कार्यकर्ता थीं। उच्च शिक्षा प्राप्त विमला ठकार का अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी और गुजराती भाषा पर विलक्षण अधिकार था। गंभीर विषय की व्याख्या की उनमें अद्भुत क्षमता थी। सामान्य हो या गहन प्रश्न, उनका व्यापक और सामयिक विश्लेषण उनकी ज्ञान की गहराई का बरबस ही साक्षात्कार करा देता था।

विमला ठकार ने महात्मा गांधी, विनोबा भावे और लोकनायक जयप्रकाश नारायण के विचारों को आत्मसात करने के लिए खुद को समर्पित कर दिया था। उन्होंने लंबे समय तक विनोबा जी के साथ भूदान यात्रा की। इस दौरान उन्हें भूदान तथा गांधी के विचारों पर आधारित समाज निर्माण की प्रक्रिया का अनुभव हुआ। उनकी रुचि तथा हृदय की त्वरा गांधी के विचारों को जानने, समझने एवं अभ्यास में अधिक थी। इसीलिए उन्होंने स्वयं को आध्यात्मिक साधना में समर्पित करने का निर्णय किया और विनोबा तथा दादा धर्माधिकारी का आशीर्वाद लेकर साधना की राह पर चल पड़ीं। करीब १० वर्षों की साधना में गांधी-विनोबा विचार की व्याख्या का विशाल भंडार ज्ञान रूप में उनमें आ गया। अब उनके मन में प्रश्न उठा कि इस ज्ञान भंडार को कैसे सामान्यजन तक पहुंचाया जाए। इसके लिए किसी स्थान की जरूरत थी जहां लोगों को खासकर युवक-युवतियों को व्याख्यान रूप में जानकारी दी जाए। कुछ व्याख्यानों के बाद लोगों की राय से हिमाचल प्रदेश के डलहौजी में इस स्थल का निर्माण हुआ, जहां उनका व्याख्यान होता था। इस बीच देश-विदेश के

शिक्षाविद्
बंशीधरजी
उर्फ
भाईसाहब, जोधपुर वाले

अ नौपचारिका में पिछले कई अंकों में हमने बंशीधरजी के शिक्षा चिंतन संबंधी लेख प्रकाशित किए हैं। भाईसाहब बंशीधर जी की तस्वीर भी बहुत प्रयासों के बाद हमें मिली थी। वह भी अनौपचारिका में प्रकाशित हुई थी। बंशीधर जी मोन्तेस्सोरी, गिजुभाई एवं ताराबहन मोडक आदि शिक्षा चिंतकों के सहकर्मी थे। जोधपुर में बाल निकेतन की स्थापना कर उन्होंने बालकोन्मुखी स्कूल को जिस संजीदा तरीके से चलाया था वह आज इतिहास बन गया है। बंशीधर जी की बालकों के लिए लिखी एक किताब सन् १९३९ के आस-पास छपी थी उसे अभी गीताप्रेस गोरखपुर ने पुन: प्रकाशित किया है। उसका चित्र नीचे दिया जा रहा है। सं. ❑

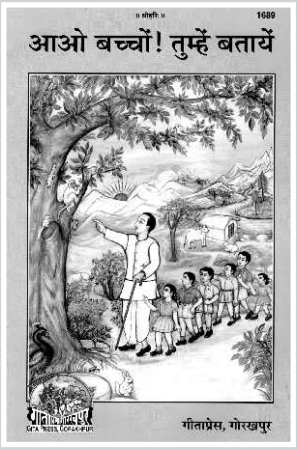

श्रोताओं का आना-जाना बढ़ गया तो हिन्दी के साथ अंग्रेजी में भी व्याख्यान की परंपरा चलती रही। इस दौरान विमला ताई का शरीर भी क्रमशः कमजोर होने लगा। विदेश के श्रोताओं ने ताई से वहां आकर व्याख्यान देने का आग्रह किया। इसके पीछे यह आशा भी थी कि वहां ताई के स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है। कई वर्षों तक यूरोप के देशों में यात्रा और व्याख्यान का क्रम चला। बीच-बीच में भारत आकर रचनात्मक संस्थाओं, कार्यकर्ताओं और वरिष्ठजनों के बीच भी उन्हें अपनी बात रखने का अवसर मिलता ही था। इस दौरान उन्हें डलहौजी तथा अहमदाबाद समेत गुजरात के अन्य स्थानों पर रहना होता था। डलहौजी उनके लिए अनुकूल नहीं था, साथ ही लोगों के आने-जाने की दृष्टि से भी यह कम उपयुक्त था। ऐसे में स्थायी रूप से रहने की व्यवस्था का सवाल उठना स्वाभाविक था। राजस्थान के आबू पर्वत पर शिवकुटी का उनके लिए स्थायी निवास एवं साधना-प्रशिक्षण एवं सत्संग केन्द्र बनना एक संयोग था। कुछ ही महीनों में वे आबू पर्वत की निवासी बन गईं और वहां के लोगों ने उन्हें अपने परिवार के सदस्य के रूप में स्वीकार कर लिया।

इस बीच देश की परिस्थितियों में परिवर्तन आया और लोकनायक जयप्रकाश नारायण के मार्गदर्शन में संपूर्ण क्रांति का उद्घोष हुआ। आपातकाल का कष्ट देश को झेलना पड़ा। इन सब कारणों से विमला ताई ने स्वयं के हित में उपवास (जिसे कुछ लोगों ने अनशन कहा) करने का निर्णय किया। यह स्वास्थ्य के लिए भी उन्हें उचित लगा। हालांकि उपवास से शरीर क्षीण-कमजोर होता गया। जैसा कि ताई ने खुद ही एक बार बातचीत में बताया था-एक दिन रात्रि में भान हुआ कि मेरे पास महात्मा रामकृष्ण परमहंस और मां खड़ी हैं और कह रहे हैं कि उपवास समाप्त करो, सब ठीक हो जाएगा। रसगुल्ला से उपवास समाप्त करो। अगले दिन सुबह कुटी के दरवाजे पर घंटी बजी और रामकृष्ण मिशन के प्रमुख स्वामीजी कटोरा लेकर पास में खड़े थे। वे बोले, महात्मा रामकृष्ण परमहंस और गुरु मां ने कहा है इस रसगुल्ले से उपवास समाप्त करो। ...और इस तरह कुल १० दिन बाद उनका उपवास समाप्त हुआ।

'सबके लिए खुला है मंदिर यह हमारा' संत तुकड़ोजी का यह गीत काफी प्रसिद्ध है। इसमें सभी धर्मों का समन्वय है। विमला ताई की संत तुकड़ोजी महाराज से निकटता थी, उनका स्नेह प्राप्त था। ताई का व्यवहार सबके प्रति स्नेह एवं सहयोग का रहता था। दूसरों का यथासंभव सहयोग करना उनका सहज स्वभाव था। उनके पास अपनी कोई संपत्ति या स्वामित्व नहीं था। जो कुछ था, वह समाज का था। शिवकुटी पर भी उन्होंने अपना स्वामित्व नहीं रखा।❑

अमित कल्ला की कविताएं

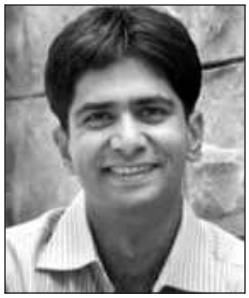

अमित कल्ला

❑

प्रेम में

नदी
सिर्फ
प्रेम पाने को बहती है
जैसे फूल
खिर जाने को
बादल
बरसने को
रेत
ठहरने को
ये खिरना
बरसना
ठहरना
बहना है
नदी
जैसा
उसी
प्रेम में। ❑

तुम्हारा अक्स

पतवार से
बखूबी मिटा देती
तुम अक्स अपना
पानी, किश्ती सब जानते हैं
पहचानते अपना रहबर
तभी तो
लामकां बन
थाम लेते यहानी उंगलियों के पोर
छुई थी बारिश कभी जिन्होंने
अपनी स्याहयात से निकल
उकेरने फिर से
तुम्हारा अक्स उस पानी पर। ❑

तथागत

सहसा
देख ही लिया
उसने आज
गहरे ठहरे हुए
समंदर को
समेट लिया
छूप-छांव का विस्तार
अपने चीवर में
कैसा
खौज लिया उसने
अपना रूप
अनागत
होकर
तथागत में। ❑

उन्होंने कहा

उन्होंने कहा
अब आगे नहीं जाना
पिछले को जुटाने में भूल जाना
उन्होंने कहा
बहते हुए समय को याद करना
फिर मिटा देना
रेखाओं से परिचय मत बढ़ाना
उन्होंने कहा
आदमी जैसे बनना
ईश्वर से होकर ना हो जाना
उन्होंने कहा
कभी आने दो आने
देख लेना
अपना आप
पहचानना
और
पकड़ लेना। ❑

रमेश थानवी

कौन बड़ा ?
लोक या सरकार

पिछले अंक में पिछले पन्ने पर मेरी अनुपस्थिति के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूं। सदाशिवजी और अरविंद के जाने से जिस विषाद ने घेर लिया था, उसके बाद मैं कुछ कह नहीं सकता था। उस विषाद के बारे में आज भी कुछ नहीं कह सकता।

यह प्रश्न बहुत बड़ा है। यक्ष-प्रश्न है यह। उत्तर केवल कोई युधिष्ठिर दे सकता था या फिर महात्मा गांधी ने दिया था। मगर आज न गांधी हैं न युधिष्ठिर। आज केवल दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि की सरहदों पर बैठे लाखों किसान हैं, हमारे अन्नदाता, जो यह कह रहे हैं कि लोकतंत्र में लोक बड़ा है। किसानों का जो मुद्दा है, वह एक अलग तथ्य है मगर असल तथ्य तो लोक की स्थिति एवं उपस्थिति को मानना है।

किसी भी लोकतंत्र में अथवा राजशाही राजतंत्र में भी लोक ही सदा बड़ा होता है। यह कई बार कई जगह पर अन्वेषित एवं परिभाषित सत्य के रूप में स्थापित किया जा चुका है कि लोक के साथ लोक शक्ति, लोक संस्कृति, लोक जीवन और लोक संवेदनाओं का भरा-पूरा संसार है। संसार ही नहीं, यह एक अपरम्पार अंबार है जिसका कोई ओर-छोर नहीं है। यहां लोक भाषाओं के हजारों-हजार भंडार भरपूर हैं। यहां प्राकृत, पाली, अपभ्रंश एवं अन्य पुरातन भाषाओं में और ब्राह्मी, खरोष्ठी जैसी लिपियों में उकेरे हुए अगण्य दार्शनिक सूत्र भरे पड़े हैं। जैसे पुरानी कहावत है कि जो ब्रह्माण्ड में है, वह पिण्ड में ही है। ठीक इसी प्रकार जो लोक में है, वह सर्वत्र है और सर्वव्यापी सार्वलौकिक जीवन सत्य है। इस सार्वलौकिक सत्य जो लोक में निहित है, उसकी अवहेलना एवं उपेक्षा निरा अपराध होगा। उपेक्षा भला कोई कैसे कर सकता है, क्योंकि किसी पुरानी फिल्म के गाने की तरह आज भी यह सच है कि *जीना यहां, मरना यहां, इसके बिना जाना कहां?*

सरकार चाहे वह लोकतांत्रिक सरकार हो अथवा अधिनायक वादी सरकार, उसके लिए लोक की उपेक्षा कभी उचित नहीं रही है। जहां-जहां लोक की उपेक्षा हुई है, वहां-वहां लोक शक्ति ने अंगड़ाई लेकर अपना रूप दिखाया है और वह रूप सदा सभी सरकारों के लिए भारी पड़ा है।

लोक में कुदरत भी है। यहां नदियां भी हैं, तालाब भी, समन्दर भी और पहाड़ एवं पठार भी। यहां लावा उगलने वाले ज्वालामुखी भी हैं और यहां तरह-तरह के नामों से आने वाले सुनामी भी हैं। सत्ता तथा सरकारें यदि चेत जाएं तो अच्छा है। न चेते तो सर्वत्र विनाश तो है ही मगर वहां सार्वलौकिक लोक-हत्या की संभावना भी है। प्रश्न फिर यही है कि क्या हम ऐसे किसी जघन्य अपराध के लिए तैयार है या फिर लोकतंत्र को पूर्णतया समर्पित हैं? ❑

मो. ९४६०३८०२३२

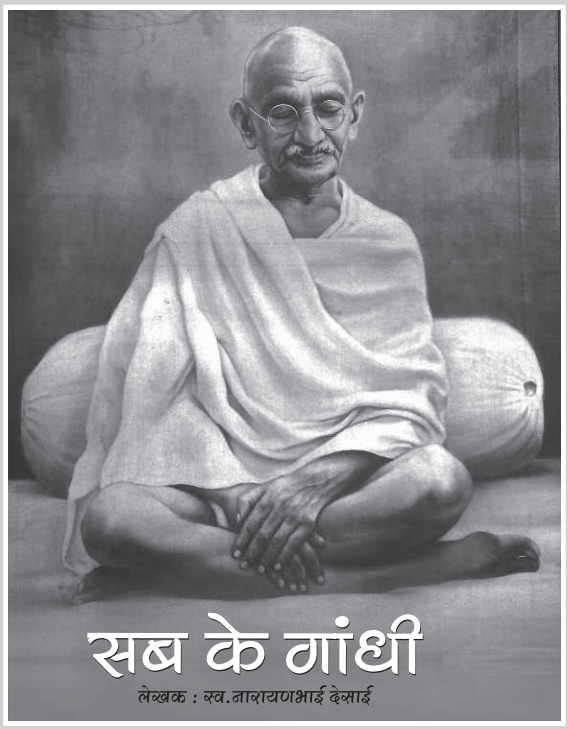

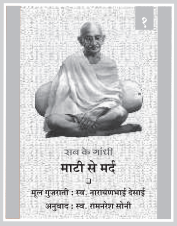

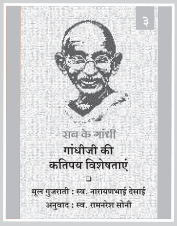

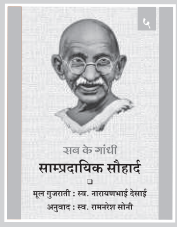

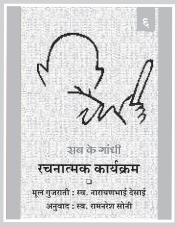

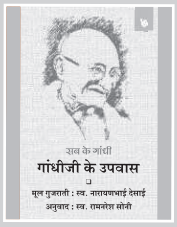

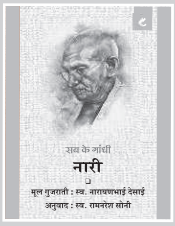

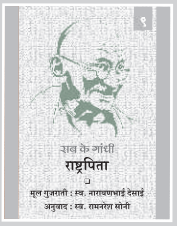

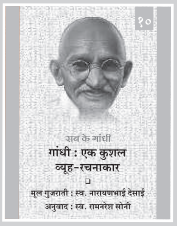

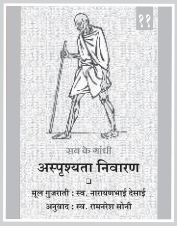

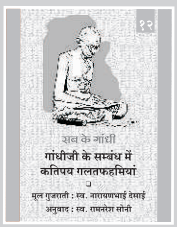

सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

सब के गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र
जयपुर–302004

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

१२ पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये ५००/– मात्र

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा
७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४ से प्रकाशित। संपादक - रमेश थानवी

अनौचारिका : पृष्ठ–२८ जनवरी, २०२१ रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No. 2581-981X

साक्षर ताना-बाना

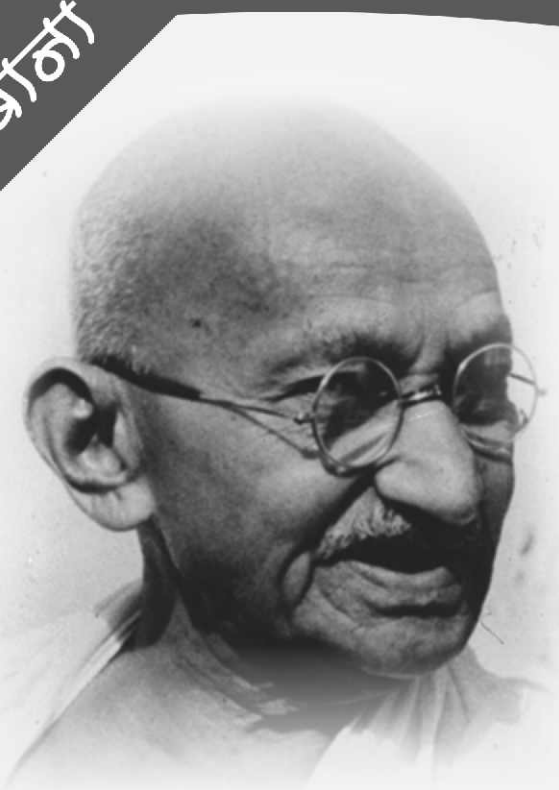

घर–घर पहुंचे यह पैगाम
सभी पंथ हैं एक समान

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर